''हे पिता, वह घड़ी आ पहुंची''

(17:1-26)

यह पाठ एक विशेष आराधना सभा से लिया गया है जिसमें बीच-बीच में गीत [नीचे उन गीतों के मुखड़ों के हिन्दी अनुवाद हैं] और प्रार्थनाएं करते हुए इसे पांच भागों में सुनाया गया था। पवित्र शास्त्र के भाग को जो स्वयं एक प्रार्थना है, प्रस्तुत करने का यह एक उपयुक्त ढंग है।

संदेश 1 - आप क्या प्रार्थना करते ?
बाइबल से पाठ: यूहन्ना 17.
गीत: ''महिमा के योग्य।''

संदेश 2 - ''अपने पुत्र की महिमा कर।''
गीत: ''अपने नाम की महिमा कर''
प्रार्थना

संदेश 3 - ''मैं उनके लिए बिनती करता हूं''
गीत: ''मुश्किल घड़ी में''

संदेश 4 - ''कि वे सब एक हों।''
गीत: ''एकता में आशीष हो''
प्रभु भोज
गीत: ''एकता में आशीष हो''
चंदा

संदेश 5 - ''मैंने तेरा नाम उनको बताया'' (निमन्त्रण)

गीत: ''हां, क्योंकि उसे फिक्र है''
गीत: ''मैं हैरान खड़ा हूं''
अंतिम प्रार्थना

आप क्या प्रार्थना करते?

बहुत तनाव में होने पर, आप क्या प्रार्थना करेंगे? यदि आपको पता हो कि कल आप मर जाएंगे, तो आप क्या प्रार्थना करेंगे? यदि अभी-अभी आपको किसी घनिष्ठ मित्र ने ठेस पहुंचाई हो तो आप क्या प्रार्थना करेंगे? यदि आपको आपका परिवार भी, गलत समझे, तो आप क्या प्रार्थना करेंगे? यदि आप गिरफ्तार होने वाले हों, आप पर मुकदमा चलने वाला हो, आपको फांसी होने वाली हो तो आपकी प्रार्थना क्या होगी?

पीड़ा और तनाव आने पर हम केवल अपने बारे में ही सोचते हैं। घबराहट या चोट लगने पर, हमारे लिए किसी दूसरे के बारे में सोचना मुश्किल हो जाता है। यही बात यूहन्ना 17 अध्याय में यीशु की प्रार्थना को इतना महत्वपूर्ण बना देती है! क्रूस पर अपनी मृत्यु से पिछली रात, अपने चेलों के साथ अन्तिम भोज लेने के थोड़ी देर बाद और जैतून के पहाड़ पर अपनी गिरफ्तारी से पहले यीशु ने यह अविश्वसनीय प्रार्थना की थी। कुछ लोग इस प्रार्थना की सुन्दरता, गहराई और शक्ति के कारण आज इसे ''प्रभु की प्रार्थना''[1] कहने की ज़िद करते हैं। जितनी बार भी हम इसे पढ़ते हैं हमें हैरानी होती है कि यीशु ने निराशा और दुख की घड़ी में भी हमारे लिए प्रार्थना की!

''अपने पुत्र की महिमा कर'' (17:1-5)

यीशु ने अपनी प्रार्थना इन शब्दों से आरम्भ की ''हे पिता, वह घड़ी आ पहुंची'' (17:1)। सुसमाचार की इस पूरी पुस्तक में समय एक मुख्य बात है। बार-बार, यीशु ने अपनी माता और अपने चेलों से कहा, ''मेरा समय अभी नहीं आया,''[2] परन्तु इस अध्याय में बताई गई शाम तक, यीशु कह रहा था, ''वह घड़ी आ पहुंची।'' चेले सम्भवत: उलझन में थे कि इसका क्या अर्थ है, परन्तु आप और मैं देख सकते हैं कि यह कहने का यीशु का अभिप्राय यह था कि क्रूस पर उसके मरने का समय निकट आ गया था।

इसके बाद यीशु ने प्रार्थना की, ''अपने पुत्र की महिमा कर, कि पुत्र भी तेरी महिमा करे'' (17:1)। जैसा कि हम पिछले अध्यायों में देख चुके हैं, इस संसार में महिमा करने का अर्थ आम तौर पर व्यक्तिगत अभिलाषा, उपलब्धि, सम्मान और प्रसिद्धि के रूप में लिया जाता है। परन्तु यीशु के मुख से निकले ''महिमा'' शब्द का अर्थ ''विनम्र सेवा'' और ''बलिदान'' है। वह प्रार्थना कर रहा था कि पिता उसे पूरी तरह से इस्तेमाल करे, चाहे इसका अर्थ क्रूस पर उसकी मृत्यु ही क्यों न हो। संक्षेप में, यीशु प्रार्थना कर रहा था, ''हे पिता, अब मैं क्रूस पर जाने के लिए तैयार हूं!'' यही बात उसने वास्तव में ऐसे कही थी ''हे

पिता, अपने पुत्र की महिमा कर।''

जब यीशु ने ''महिमा कर'' कहा, तो वह जानता था कि वह क्या कह रहा है। उसने उस महिमा को याद किया जो ''जगत के होने से पहिले'' पिता के साथ उसकी थी (17:5), और वह यह भी जानता था कि यह महिमा उसे फिर से मिलेगी जब वह अपने पिता के पास लौटेगा। इस कारण यह प्रार्थना करते हुए कि ''अपने पुत्र की महिमा कर'' यीशु के ध्यान में स्वर्ग और क्रूस दोनों ही थे।

''मैं उनके लिए बिनती करता हूं'' (17:6-19)

प्रार्थना में, यहां यीशु का ध्यान चेलों की ओर चला गया। सच्चाई तो यह है कि इस प्रार्थना में किसी और विषय से बढ़कर चेलों के बारे में अधिक कहा गया है। यहां हम इस अजीब प्रदर्शन को देखते हैं कि इतने कष्ट में भी, यीशु ने अपने दुख से अधिक दूसरों की चिंता की। यह जानते हुए भी कि उसके साथ क्या होने वाला है, उसने उनके लिए प्रार्थना की।

पिता ने यीशु की सेवकाई के लिए उसे चेले दिए थे। प्रार्थना करते हुए यीशु ने अपने पिता से कहा कि वह उन्हें वे सब बातें सिखाकर जो पिता चाहता था कि वह उन्हें सिखाए उन्हें उसे पिता को सौंप रहा था। फिर उसने पिता से यह कहते हुए ''उनके लिए'' प्रार्थना की कि वह उन्हें ले ले (17:9), या, जैसे यीशु ने कहा, ''अपने उस नाम से ... उनकी रक्षा कर'' (17:11)। इस प्रार्थना में यीशु की मुख्य चिंता यह थी कि चेले ''एक'' हों। पहले तो पता नहीं चलता कि वह किसके एक होने की बात कह रहा है, परन्तु बाद में स्पष्ट हो जाता है कि वह चाहता है कि उसके चेले न केवल एक दूसरे के साथ, बल्कि उसके और पिता के साथ भी इकट्ठे (''एक'') हों। ''एकता'' बाइबल की एक अद्‌भुत अवधारणा है जिसकी जड़ें आदम और हव्वा की कहानी में मिलती हैं (उत्पत्ति 2:24), और इससे इस बात का पता चलता है कि मसीही लोगों के लिए एक दूसरे के साथ और परमेश्वर के साथ एक होना क्यों आवश्यक है।

आगे, यीशु ने चेलों के लिए प्रार्थना की, क्योंकि वह उन्हें संसार में छोड़कर जा रहा था। इस पूरी प्रार्थना में हम उसके चेलों और संसार के बीच एक मनोहर सम्बन्ध देखते हैं।

... जिन्हें तू ने जगत में से मुझे दिया: ... (आयत 6)।

... ये जगत में रहेंगे, ... (आयत 11)।

... ये बातें [मैं] जगत में कहता हूं, ... (आयत 13)।

... जैसा मैं संसार का नहीं वैसे ही वे भी संसार के नहीं (आयत 14)।

मैं यह बिनती नहीं करता, कि तू उन्हें जगत से उठा ले ... (आयत 15)।

जैसे मैं संसार का नहीं, वैसे ही वे भी संसार के नहीं (आयत 16)।

जैसे तू ने जगत में मुझे भेजा, वैसे ही मैं ने भी उन्हें जगत में भेजा (आयत 18)।

यीशु को अपने चेलों की बहुत चिन्ता थी क्योंकि उन्होंने संसार *में* रहना था जबकि उसने उनके साथ संसार *में* नहीं रहना था। उन्होंने संसार *में* तो होना था, परन्तु वे संसार *के* नहीं थे। उनके मिशन के कारण, उन्हें संसार *में* भेजा जा रहा था। संसार से उनके सम्बन्ध के बारे में यीशु की प्रार्थना 1 राजा 19:4 में एलिय्याह की प्रार्थना का स्मरण दिलाती है। अपनी सेवकाई में निराशा के एक विशेष समय में, उसने प्रार्थना की थी कि परमेश्वर उसका प्राण उठा ले और उसे संसार से मिटा दे। परमेश्वर ने एलिय्याह की बिनती ठुकरा दी थी और शीघ्र ही वह एक बार फिर परमेश्वर के भविष्यवक्ता के रूप में संसार में काम करने लगा था।

चेलों के लिए यीशु की प्रार्थना से हमें आज संसार से अपने सम्बन्ध का पता चलता है। हम संसार *में* तो हैं, परन्तु संसार *के* नहीं हैं। परमेश्वर के दासों के रूप में, हमारा मिशन उसके सुसमाचार को संसार *में* ले जाना है। संसार से हमारे सम्बन्ध की बात कोई मामूली नहीं है, परन्तु क्रूसारोहण की पूर्व संध्या पर यीशु की प्रार्थना इस कठिन मुद्दे को स्पष्ट करने के लिए बहुत गहराई तक ले जाती है।

यह जानते हुए कि मेरे साथ क्या होने वाला है, यीशु ने अपने चेलों के लिए प्रार्थना की। इससे हमें यीशु के मन के बारे में क्या पता चलता है? इसमें आज हमारे लिए उसकी चिंता का क्या संदेश है?

''कि वे सब एक हों'' (17:20-24)

आयत 20 से, यीशु बारह (इस समय ग्यारह थे) प्रेरितों के लिए अपनी चिन्ता से आगे निकलकर, उनके लिए प्रार्थना करने लगा ''जो इनके वचन के द्वारा मुझ पर विश्वास करेंगे'' (17:20)। यूहन्ना रचित सुसमाचार में हम ''विश्वास'' शब्द के आस-पास ही रहते हैं। सुसमाचार की इस पुस्तक का उद्देश्य ही विश्वास है (20:30, 31) और यीशु के लिए जीवनभर यह सबसे महत्वपूर्ण बात थी। चेलों के वचन के द्वारा यीशु में विश्वास करने वालों में हम भी शामिल हैं! अपने सबसे कठिन समय में, यीशु ने मेरे और आपके लिए प्रार्थना की!

हमारे लिए यीशु की प्रार्थना यह थी कि हम ''एक'' हों। इस प्रार्थना में यीशु ने चार अलग-अलग बार बिनती की कि हम ''एक'' हों। प्राय: यही समझा जाता है कि ''एक'' होने का अर्थ यह है कि मसीही लोग एक दूसरे से ''मिलकर'' रहें, ताकि वे शांति से रह सकें और उनमें झगड़े न हों। परन्तु, जिस एकता के लिए यीशु ने प्रार्थना की थी वह इससे कहीं बढ़कर है। सच्ची एकता पिता और पुत्र के एक होने में देखी जाती है (17:21)। यीशु चाहता था कि जैसे वह और पिता एक हैं वैसे ही हम भी उनके साथ एक हों (17:23)।

मसीही एकता पिता और पुत्र के साथ इस तरह घुल-मिल जाने से होती है कि हम एक होने वाले हर एक के साथ एक हो जाते हैं। आजकल प्रचलित भाषा का इस्तेमाल करें, तो यह एकता आत्मिक ''सामूहिक आलिंगन'' है जिसमें पिता, पुत्र और प्रत्येक मसीही शामिल है।

जिस एकता के लिए यीशु ने प्रार्थना की थी उसे परिवार के सम्बन्धों से दिखाया जा सकता है। क्या आप किसी ऐसे परिवार को जानते हैं जिसमें कभी झगड़ा न हुआ हो, परन्तु वे एक दूसरे से मिलते न हों यहां तक कि बात भी न करते हों? इसके विपरीत, क्या आपने कोई ऐसा परिवार देखा है जो एक दूसरे से मिलता और बातचीत तो करता हो, परन्तु बात-बात पर झगड़ता और उलझता हो? इनमें से कौन सा परिवार कलीसिया के जैसा लगता है? कौन से परिवार में एकता है? निश्चय ही जिस परिवार में छोटे-मोटे झगड़ों के बावजूद मेल-मिलाप बना रहता है। मेरा मानना है कि यीशु हमारे लिए आज के मसीहियों के रूप में ऐसे ही सम्बन्ध की प्रार्थना कर रहा था।

प्रभु की मेज के पास इकट्ठे होकर, हम मसीह में एकता का जश्न मनाते हैं। निश्चय ही हमारी एकता पूर्ण नहीं है। कई बार एक संयुक्त परिवार की तरह हम में भी छोटे-मोटे झगड़े होते रहते हैं। फिर भी, हम एक दूसरे के प्रति समर्पित हैं, एक दूसरे से प्रेम करते हैं, और पिता और पुत्र में एक हैं। प्रभु भोज के द्वारा हम क्रूस की ओर लौटते हैं। वहां हम अपने आपको यीशु के साथ और ''निकट,'' पिता के साथ और ''निकट'' और कलीसिया में अपने भाइयों और बहनों के साथ और ''निकट'' पाते हैं।

''मैंने तेरा नाम उनको बताया'' (17:25, 26)

अपनी प्रार्थना के अन्त में यीशु ने फिर पिता का नाम लेकर उसे सम्बोधित किया (17:25)। उसने बताया कि संसार ने पिता को नहीं जाना, परन्तु यीशु उसे जानता था। उसने बताया, कि उसकी सेवकाई के कारण चेलों को समझ आ गई थी कि पिता ने पुत्र को भेजा था (14:26)। यीशु ने पहले फिलिप्पुस से कहा था, ''जिस ने मुझे देखा है उस ने पिता को देखा है'' (14:9)। इस प्रार्थना से थोड़ी देर पहले, चेलों ने यीशु से कहा था, ''इस से हम प्रतीति करते हैं, तू परमेश्वर से निकला है'' (16:30)।

इस प्रकार पिता का ज्ञान यीशु की ओर से चेलों को दिया गया था। यीशु की अन्तिम प्रार्थना यह थी कि पुत्र से पिता का प्रेम यीशु से चेलों में हो। यीशु ने क्रूस पर चढ़ने से एक रात पहले पिता से पुत्र और पुत्र से चेलों तक और अन्ततः सारे संसार में सुसमाचार के फैलाव के लिए ही प्रार्थना की थी। उस शाम भी उसे यह बात बहुत सता रही थी, और निश्चय ही आज भी उस पर यह बोझ है! पुत्र पिता के साथ ''एक'' होने वाले आनन्द को जानता था, और वह चाहता है कि सारा संसार पिता और पुत्र के साथ ''एक'' होने के आनन्द को अनुभव करे।

पाद टिप्पणियां

[1]मत्ती 6:9-13 में मिलने वाली नमूने की प्रार्थना को अधिकांश लोग ''प्रभु की प्रार्थना'' कहते हैं। [2]2:4; 7:6, 8, 30. बाद में वह बताने लगा कि उसकी घड़ी कैसे आई थी: 12:23, 27; 13:1; 16:32.

''मैं मसीह की कलीसिया का सदस्य कैसे बन सकता हूं?''

मसीही लोग अर्थात मसीह की कलीसिया के सदस्य उन लोगों को कहा जाता है जिनका उद्धार मसीह के लहू से हुआ था। इसलिए कलीसिया केवल पापियों से अर्थात उन लोगों से मिलकर बनती है जो कभी अपने पापों में खोए हुए थे, जिन्होंने परमेश्वर के अनुग्रह को स्वीकार कर लिया है। कलीसिया की योजना बच्चों के लिए नहीं बनाई गई थी। बच्चे ''सुरक्षित'' होते हैं क्योंकि उन्हें उद्धार की आवश्यकता नहीं है (मत्ती 18:3)। जब हम इतने बड़े हो जाते हैं कि पाप को परमेश्वर के विरुद्ध विद्रोह के रूप में देखते हैं; तभी पाप करते हैं। क्योंकि सबने पाप किया है (रोमियों 3:23), इसलिए सबको उद्धार की आवश्यकता है।

मसीह हमें पापों से उद्धार दिलाने के लिए मरा (1 कुरिन्थियों 15:3)। उसके अनुग्रह के दान को पाने के लिए हमें क्या करना चाहिए?

पहले तो, हमारे लिए *मसीह के बारे में* जानने के लिए, सुसमाचार की तेजोमय सच्चाइयों को सीखना आवश्यक है (मत्ती 28:18-20; यूहन्ना 6:45)। इससे हमें *विश्वास* आना चाहिए (रोमियों 10:17), मसीह में ऐसा विश्वास जिससे हम *दूसरों के सामने अंगीकार कर सकें कि यीशु परमेश्वर का पुत्र है* (रोमियों 10:9,10)। हमारे विश्वास से हमें *अपने पापों से मन फिराने* में अगुआई मिलनी चाहिए (प्रेरितों 2:37,38) अर्थात पापों के प्रति अपना व्यवहार बदलना चाहिए (2 कुरिन्थियों 7:10)। अन्त में हमारे विश्वास से *बपतिस्मा लेने* में अगुआई होनी चाहिए (मरकुस 16:16)। बपतिस्मा पापों की क्षमा के लिए पानी में (प्रेरितों 10:47) गाड़े जाना है (रोमियों 6:3,4)।

कलीसिया की स्थापना के दिन लगभग 3000 लोगों ने इस योजना को अपनाया था। फिर प्रभु ने अन्य लोगों को अपनी कलीसिया में मिला लिया था (प्रेरितों 2:38,41,47)। मसीही बनने से, उनके जीवन पहले से अलग हो गए थे अर्थात ''और वे प्रेरितों से शिक्षा पाने, और संगति रखने और रोटी तोड़ने में और प्रार्थना करने में लौलीन रहे'' (प्रेरितों 2:42)।

1 कुरिन्थियों 12:13 में पौलुस ने ज़ोर देकर कहा कि आत्मा की शिक्षाओं से अगुआई पाने वाले लोग ''एक देह में बपतिस्मा'' पाते हैं, जो कि कलीसिया है (कुलुस्सियों 1:18)। क्योंकि कलीसिया उद्धार पाए हुए लोगों की देह है, इसलिए जो हमें कलीसिया के सदस्य बनाता है वही हमारा उद्धार भी करता है, और जिससे हम उद्धार पाते हैं उसी की कलीसिया के सदस्य भी बनते हैं।